॥ श्रीः ॥

शृङ्गार तिलक।

[खण्डकाव्य]

कविराज कालिदास कृत

श्री त्रिपाठी नारायण पति
के बनाये हुए पद्यमय तिलक के सहित

काशी "लहरी" यन्त्रालय में मुद्रित।

PRINTED AND PUBLISHED BY
PANNA LAL ROY MANAGER
LAHARI PRESS, BENARES CITY.

1910.

॥ श्रीशीवन्दे ॥

श्रीकालिदास जी के विषय में अपना भ्रम—

निवेदन।

यह "शृङ्गारतिलक" शृङ्गार रस के खण्ड काव्यों में अनूठा है, नववयस्क विद्यार्थी लोग प्रायः इस ग्रंथ के दो चार श्लोकों को कण्ठस्थ रखते हैं, इस ग्रँथ के निर्माता कविकुल तिलक "कालिदास जी" का नाम सर्वत्र ही प्रसिद्ध है, सुशिक्षित समाज में शायद ऐसे बिरले ही लोग होंगे जो कि "कालिदास" के नाम से अपरिचित होवें॥

पर उन कालिदास जी का "जीवनचरित्र" आज तक ऐसा नहीं देखने में आया जिससे चित्त को पूर्ण सन्तोष हो सके। लेकिन सूर्य को कोई छिपा भी नहीं सकता,—यद्यपि काशी के अस्तमित भारतेन्दु "बाबू हरिश्चन्द्रजी ने" अपने "चरितावली" नामक इतिहास ग्रंथ में "कालिदासका चरित्र" शीर्षक विशाल लेख देकर मुक्तकण्ठ होकर यह दिखा दिया है कि उक्त कवि के समय का ठीक पता नहीं लगता वरन कई एक "कालिदास का" होना निश्चित है। परन्तु इस प्रसिद्ध पद्य के अनुसार महाराज "विक्रमादित्य के" दरबार में इन महाकवि का रहना प्रमाणित होता है। यथा—

"धन्वन्तरि, क्षपणका, मरसिंह, शङ्कु,—
वेतालभट्ट, घटकर्पर, कालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां,
रत्नानि वै वररुचि र्नव विक्रमस्य ॥"

(ज्योतिर्विदाभरण)

इसी विक्रम की सभा में कवित्व शक्ति के परीक्षार्थ कलश में भगवती सरस्वती देवी की स्थापना करके कालिदास के—

"चूर्ण मानीयतां तूर्णं, पूर्ण चन्द्रनिभानने !"

कहने पर "दण्डी" कविने (जिसने "काव्यादर्श" "मल्लिकामारुत प्रकरण" २ एवं "दशकुमार चरित्र" ३ नामक ग्रंथों का निर्माण किया है) यह पद्य कहा—

"पर्णानि स्वर्णवर्णानि, कर्णान्ता-कीर्ण लोचने !"

इसपर घट-मध्यस्थ वाग्देवीने यही फैसला किया कि—

"कविर्दण्डी, कविर्दण्डी, कविर्दण्डी, न संशयः।"

इतना सुनतेही "कालिदासजी से" नहीं रहा गया, तुरत दण्डा उठाकर बोले—"कोऽहंरण्डे !" फिर उत्तर मिला—

"त्वमेवाहं, त्वमेवाहं, त्वमेवाहं, न संशयः।"

अर्थात् कवि तो दण्डीही है, पर तुम मेरे अंश हो। अस्तु उन्हीं कालिदासजी को लोगों ने सरस्वती का अवतार मानकर यह श्लोक यथार्थ रूप से लिखा है—

"पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे,
कनिष्ठिकाधिष्ठित-कालिदासे।
अद्यापि तत्तुल्यकवे रभावा,—
दनामिका सार्थवती बभूव ॥"

पर चरित्र में यह और भी विचित्र बात है कि जैसे सवी मिथिलेश "जनक" कहलाते थे अथवा अब भी "घोसला" तथा "सेंधिया" इत्यादि राजों की पदवी (अल्ल) प्रचलित है वैसेही "विक्रम" किंवा भोज भी अनेक माने जाते हैं, पर हमलोग तो संबत् चलाने वाले "विक्रमादित्य को" सूधे १९५६ वर्ष से जानते हैं। और उन्हींके सभा रत्न "कालिदासजी को" सर्बश्रेष्ठ एवं "महाकवि" कहते और मानते आते हैं॥

इसी प्रकारसे जगत्प्रसिद्ध परम विद्योत्साही उसी महाराज को "भोज" समझते हैं जिन्होंने "चम्पू रामायण" १ "अमरटीका" २ "पातञ्जल योग सूत्र वृत्ति" ३ "सरस्वती कण्ठाभरण" ४ "राजवार्तिक" ५ एवं "चारुचार्य" ६ इत्यादि उत्तमोत्तम ग्रंथों की रचना की है। फिर इनके द्वार (दरबार) में भी "कालिदासजी" का वर्तमान रहना संस्कृत के "भोजप्रबन्ध" वङ्गभाषा के पद्यमय "प्रफुल्लज्ञान नेत्र" गुजराती जैन ग्रंथों के "भोज सुबोध रत्नमाला" १ "भोज अने कालिदास" २ और "प्रबन्ध चिंतामणि" ३ एवं हिन्दी के आधुनिक "भोज और कालिदास"—इत्यादि नामक प्रचलित ग्रंथों के अनुसार सर्बथा प्रमाणित है। ऐसी अवस्था में विक्रम के सभारत्न कालिदास का ही भोज के दरवार में भी वर्त्तमान रहना बहुत ही असम्भव है, क्योंकि विक्रम और भोज के समय में तीन चार सौ वर्ष का अन्तर निश्चित हो चुका है। तो फिर भोज के दरबारी कालिदास का द्वितीय होना सिद्ध हो जाता है, और सम्भव भी है कि किसी कवि के सर्वोत्तम होने से भोज ने उनका नाम कालिदास ही रख दिया हो क्योंकि कालिदास के बनाये हुए ग्रंथों में कवित्वशक्ति, लेखप्रणाली और काव्य के गठन में भी बहुत ही भेद देख पड़ता है। योंही राजा शारदानन्द की बेटी परमपण्डिता विद्योत्तमा से विवाह होजाने पर अपनी पत्नी की अनीवस विद्या प्राप्त करने वाले एक तीसरे कालिदास भी हो गये हैं, जिनके बारे में पूर्वोक्त बाबू हरिश्चन्द्र ने यह लिखा है कि—"बंग देशाय पंडितों ने कालिदास को लम्पट दोषा बच्छिन्न मानकर वंगभाषा के पद्यमय **प्रफुल्ल ज्ञाननेत्र** नामक ग्रंथ में इसे लिखा है यह मिथ्या कल्पना है"—

पर मेरी समझ में इस शृङ्गार तिलक के निर्माता यही तीस

कालिदास हैं, और सम्भव है कि ये बङ्गदेशीय ही रहे हों क्योंकि इस ग्रंथ के **श्लाघ्यं नीरस** (८) इत्यादि श्लोक में कमर पर घड़े का लेना तथा **वाणिज्येन** (११) इत्यादि श्लोक में सास का दामाद के घर पर जाना वर्णन किया है, यह चाल बंगाल ही की है और **दृष्ट्वा यासां नयन सुषमा वङ्ग वाराङ्गनानां** (१७) इस पद्य में **(दन्तिनः सन्ति मत्ताः)** लिखकर वर्तमान काल के प्रयोग से अपनी अवस्था प्रकट की है, बस इन्हीं प्रमाणों से इन कालिदास का बङ्ग देशीय होना निश्चित होता है। इन महाशय का कुछ लम्पट होना भी असम्भव नहीं है, क्योंकि इन्हीं के बनाये हुए "श्रुतबोध" नामक ऐसे ही छोटे से छन्दो ग्रन्थ में इन्हों ने—

"घन-पीन-पयोधर-भारनते !"

और

"शरच्चन्द्र-विद्वेषि-वक्त्रा-रविन्दे !"

इत्यादि सम्बोधक प्रयोगों से अपनी लम्पटता प्रकट कर दी है। जान पड़ता है कि ये वैद्य भी थे क्योंकि इसी ग्रंथ में—

"क्व भ्रात ! प्रचलितोऽसि वैद्यक गृहं (१४)"—

तथा **"विषस्य विष मौषधम्"** (१५) इत्यादि पद्यों के आशय से वैद्यता झलक पड़ती है। शृंगारी कवि होने के कारण तद्देशीय राज दरबार से इन्हें **"कविराज"** का पद सम्मानार्थ मिला हो और उसी कारण से आजतक बंगदेशीय वैद्य लोग कविराज पदवी से अलंकृत रहते चले आते हों तो कोई भी आश्चर्य की बात नहीं है॥

वरन आश्चर्य की बात यह है कि काशिराज के द्वारपण्डित तारानाथ तर्क वाचस्पति महाशय ने इस **कविराज** पदवी का कुछ भी छान बीन न करके "एशियाटिक सुसाइटी के" छपे हुए वराह मिहिर के बृहत्संहिता नामक ग्रंथ में **"काव्यत्रयं यद्रघुवंशपूर्वं"** इत्यादि प्रक्षिप्त श्लोक के आधार पर रघुवंशादि काव्यों के कर्ता

कालिदास ही को ज्योतिर्विदाभरणकार मान लिया है मेरी मन्द मति के अनुसार यदि कविता का मिलान किया जावे तो—

१ रघुवंश (काव्य)
२ कुमार सम्भव (काव्य)
३ मेघदूत (काव्य)
४ ऋतुसंहार (काव्य)
५ अभिज्ञान शाकुन्तल (नाटक)
६ विक्रमोर्वशी (नाटक)
७ मालविकाग्निमित्र (नाटक)

इत्यादि ग्रंथों के रचयिता विक्रम के सभारत्न प्रथम कालिदास का होना उचित जान पड़ता है, क्योंकि इन्हीं काव्यों की कविता पर मोहित होकर विज्ञ जनों ने—

"कालिदासकविता नववयः
सम्भवन्तु मम जन्म जन्मनि ।"

इत्यादि स्तुत्य वचनों को लिखा है, और वास्तव में कालिदासजी उपमा एवं माधुर्य्य तथा प्रसाद इत्यादि गुणों के बादशाह हैं, इसी लिये **उपमा कालिदासस्य** प्रसिद्ध है, इन्हीं कारणों से प्रथम कालिदास ही "महाकवि" पद के वाच्य पुरुष हैं ॥

रहे अब दूसरे भोज के दरबार वाले कालिदास सो स्यात् उन्हों ने प्रथम कालिदास से अधिक यश पाने की अभिलाषा से कठोर काव्य रचकर अपने पाण्डित्य की चातुरी दिखलाई हो तो—

१ नलोदय काव्य ।

तथा

२ गंगाष्टक स्तोत्र ।

का बना देना सिद्ध हो सकता है, और उन्हीं का ज्योतिष शास्त्र में मुहूर्त विषयक "ज्योतिर्विदाभरण" नामक ग्रंथ का भी निर्माण

करना सम्भव है, क्योंकि यह ग्रंथ ज्योतिष का होने पर भी पूर्वोक्त दोनों ग्रंथों ही की चाल पर क्लिष्ट बनाया गया है। फिर इन सब बातों के ऊपर एक यह प्रमाण बहुत अच्छा है कि **ज्योतिर्विदाभरण** में अयनांश का गणित शालिवाहन के शक पर किया है और शालिवाहन विक्रमादित्य से १३५ वर्ष पीछे हुआ है, तो ऐसी दशा में वैक्रम कालिदास ही को उक्त ग्रंथ का निर्माता कैसे कहा जावे? हाँ दूसरे भोज वाले कालिदास उसके रचयिता अवश्य हो सकते हैं॥

अब इस **शृंगार तिलक** के कर्ता कविराज महाशय तीसरे कालिदास ठहरे इनकी इस "**वङ्गवाराङ्गनानां**" वाली कविता से रघुवंश में महाराज रघु के दिग्विजय—प्रसङ्ग में "**वङ्गानुत्खाय-तरसा**" लिखने वाले कालिदास की कविता का अन्तर सभी सहृदय रसिक विद्वानों को स्पष्ट दीखता होगा, अतएव उसके विशेष उद्घाटन की कोई अवश्यकता नहीं जान पड़ती॥

पर हां इन कविराज महाशय के तृतीय ही रह जाने पर हिन्दी भाषा के नवीन कालिदास का भी नाम सुनाये रहना उचित जान पड़ता है, क्योंकि वे भी तो इसी **लकीर के फ़कीर** ठहरे तब कालिदास के प्रेमी लोग उनका भी नाम जाने रहैं॥

इस विषय में अज्ञता वश चाहे भ्रम में पड़कर मैंने जो कुछ अनुचित अथवा अट्टसट्ट लिख मारा हो उसे उन महापुरुषों की पवित्र आत्मायें क्षमा करें और मेरी भूल चूकों को सुधारकर मुझे अपने यथार्थ वृत्तान्त सूचित (आगाह) करा देवें नहीं तो मैं इस प्रसिद्ध पद्य को—

"एक हस्ते...च्छाया, एक हस्ते कुचद्वयम्।
अभाग्यं कालिदासस्य, द्विमुष्टि चतुरङ्गुलम्॥"

इन्हीं कविराज महाशय के वर्णन में माने बैठा रहूंगा॥

अन्त में यह विनय पुरस्सर निवेदन है कि बङ्गदेशीय कविराज महाशय लोग कृपा पूर्वक यह लिखें कि ये कालिदास कब और किस राजा के राज्य शासन काल में प्रकट हुए? फिर क्योंकर इनको **कविराज** की उपाधि मिली? और इस **शृङ्गार तिलक** तथा

श्रुतबोध से भिन्न अन्य कौन कौन से ग्रंथ उनके बनाये हुए हैं ? एवं उनके विषय में और जो कुछ इतिवृत ज्ञात हुआ हो उसकी सूचना से हमलोगों को अनुगृहीत करें ॥

मुझे पूर्ण विश्वास है कि कोई न कोई **माई का लाल** अवश्यमेव महाकवि कालिदास जी का सविस्तर जीवन चरित्र लिखकर अपनी विज्ञता, वाणी, लेखनी और जन्म को सार्थक करेगा, तो उसी प्रकरण में इन कविराज महाशय की भी सफाई हो जावेगी ॥

इस **शृङ्गारतिलक** पर कविराजचन्द्र की बनाई हुई शान्ति पक्ष की संस्कृत टीका उत्तम है और उसका वंगदेश में बड़ा आदर है। मैं भी अभी अननुभवी अनुवादक हूं इससे सम्भव है कि इस **शृङ्गार तिलक के तिलक** में अनेक दोष अथवा त्रुटियां रह गई हों, पर मुझे पूरा भरोसा है कि मेरे सुहृद्गण मेरी भूलों को सुधार कर मेरा उत्साह बढ़ावेंगे, तभी मैं भी उनसे दूसरे ग्रंथों को देखने के लिये कुछ समयरत्न मांगने का साहस करूंगा, यदि दैववश उनलोगों ने इसे नापसन्द करके मन मोड़ा या नाक ही सिकोड़ा तो मैं भी अपना हाथ बटोर कर महती **इतिश्री** लगा देता हूं ॥

॥ इत्यलं पल्लवितेनेति शुभम् ॥

निवेदक—

विनीत

त्रिपाठि नारायणपति शर्म्मा

बनारस।

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

सतिलकं ।

शृङ्गार तिलकं काव्यम् ।

कविराज कालिदास कृतम् ।

गिरा अर्थ सम एक तन, वाग अर्थ सिधि हेत ।
साम्ब सम्भु बन्दौं जगत-बीज मातु पितु खेत ॥ १ ॥

॥ मूल श्लोक ॥

बाहू द्वौ च मृणाल मास्यकमलं लावण्य लीलाजलं
श्रोणी तीर्थ शिला चनेत्र शफरं धम्मिल्ल शैवालकम्
कान्ताया स्स्तनचक्रवाक युगलं कन्दर्पबाणा नलै-
र्दग्धाना मवगाहनाय विधिना रम्यं सरो निर्मितम् ।१।

॥ तिलक-सवैया ॥

भुज दोउ मृनालके नाल मनो, मुख अंबुज नेत्र दोऊ सफरी
सुकुमारि के बार सेवारसे बारि,-तरंग हैं लोन बिलास भरी ।
चकवा चकई कुच स्रोनि सिला, यह रम्य सरोवर देख परी
स्मरबान हुतासन दग्धनको, विधिना अवगाहन हेतु करी ॥१॥

॥ मूल श्लोक ॥

आयाता मधु यामिनी यदि पुन र्नायात एव प्रभुः
प्राणा यान्तु विभावसौ यदि पुन र्जन्मग्रहं प्रार्थये ।
व्याधः कोकिलबन्धने हिमकरध्वंसे च राहुग्रहः
कन्दर्पे हरनेत्र दीधिति रहं प्राणेश्वरे मन्मथः ॥२॥

॥ तिलक-सवैया ॥

रात बसंत कि आय गई, अबलौं नाहिं कंत घरे चलि आवैं
प्रान प्रवेस करैं बरु आगि में, दूसर जन्म जुपै हम पावैं ।
व्याध ह्वै कोकिल बांधि धरौं, हिमरस्मिहिं राहु ह्वै खूब सतावैं
कामहिं छारि करौं हरआंखि ह्वै, मन्मथ प्रानपती तरसावैं ॥२॥

॥ मूल श्लोक ॥

इन्दीवरेण नयनं मुख मम्बुजेन
कुन्देन दन्त मधरं नवपल्लवेन ।
अङ्गानि चम्पकदलै स्स विधाय वेधाः
कान्ते ! कथं घटितवा नुपलेन चेतः ? ॥३॥

॥ तिलक-सवैया ॥

नील सरोज से नैन दोऊ, मुख सुन्दरता जलजात लजावत
कुन्दकली सम दन्त सबै, नव पल्लव कोमल ओठ लुभावत ;
चंपकके दलको दलिकै सब अंग अनंगहि आपु जियावत
छाती नहीं दरकी बिधिकी, तुव चित्त पखान समान बनावत ॥३॥

॥ मूल श्लोक ॥

एको हि खञ्जनवरो नलिनी-दलस्थो
दृष्टःकरोति चतुरङ्गबलाधिपत्यम् ।
किम्वा करिष्यति भवद्वदनारविन्दे
जानामि नो नयनखञ्जनयुग्म मेतत् ॥४॥

॥ तिलक-सवैया ॥

कोऊ जुपै नलिनी दल ऊपर, एकहु खञ्जन देखन पावत
सो चतुरंगें बलाधिपती कर, आसन लेइ सुसासन भावत
मोंहि नहीं समुझात कछू यह, का करि हैं नाहिं कोऊ बतावत
जो तुमरे मुख पंकज पै चख-खंजन जुग्मक ह्वै दरसावत ॥ ४ ॥

॥ मूल श्लोक ॥

ये ये खञ्जन मेक मेव कमले पश्यन्ति दैवात्कचित्
ते सर्बे कवयो भवन्ति सुतरां प्रख्यातभूमीभुजः।
त्वद्वक्राम्बुज नेत्रखञ्जनयुगं पश्यन्ति ये ये जना
स्तेते मन्मथ बाणजाल विकला मुग्धे! कि मत्यद्भुतम्

॥ तिलक सवैया ॥

जे नरलोग कहूं लखि पावत, एकहु खंजन पद्मके ऊपर
वे सबके सब होंय कबीश्वर, नाहिं तौ होत हैं ख्यात महीश्वर।
पै तुमरे मुख अंबुज पै चख, खंजन जुग्मक देखि मनोहर
होत हैं मन्मथ बानके जालसे,बिद्ध बेहाल है हाल बिचित्तर ॥५॥

॥ मूल श्लोक ॥

झटिति प्रविश गेहं माबहि स्तिष्ठ कान्ते!
ग्रहणसमयबेला वर्तते शीतरश्मेः।
तदिह विमलकान्तिं वीक्ष्य नूनं स राहु
र्ग्रसति तव मुखेन्दुं पूर्णचन्द्रं विहाय ॥६॥

॥ तिलक-मालिनी छन्दही में ॥

झटपट घरमें जा, बैठु बाहर न प्यारी!
ग्रहन समय बेला, होगई चन्द्रमा की।
निरमल सुखदायी, देखिकै तो मुखेन्दु
ग्रासिहिं अवसि राहु, छाड़िकै पूर्न चन्द्रै ॥६॥

॥ मूल श्लोक ॥

कस्तूरीवर-पत्र-भङ्ग-निकरो मृष्टो न गण्डस्थले,
नो लुप्तं सखि! चन्दनं स्तनतटे धौतं न नेत्राञ्जनम्।
रागो न स्खलित स्तवा धरपुटे ताम्बूलसम्बर्द्धितः
किं रुष्टासि गजेन्द्र मन्दगमने! किम्वा शिशुस्तेप्रतिः

नहिं गोल कपोलन ऊपरकी, मकरी तुमरी सखिरी ! बिगरोरी,
कुच मेले छुटे नहिं हैं हरि चन्दन, अंजन धोये नहीं चख-कोरी।
नहिं लाली गई अधरामृतकी, जिहि पानकी बीड़िन खूब बढ़ोरी,
कहु काहेको रूसि गई गज गामिनि ! की तुव नाथ अहै शिशुगोरी७

॥ मूल श्लोक ॥

समायाते कान्ते कथमपिच कालेन बहुना,
कथाभि र्देशानां सखि ! रजनि रर्द्धं गतवती ।
ततो याव ल्लीला-कलह-कुपिता स्मि प्रियतमे,
सपत्नीव प्राची दिगि यमभव त्ताव दरुणा ॥८॥

॥ तिलक-उसी शिखरिणी में ॥

पिया आये मोरे बहुत दिन बीते घर तई,
कथासे देसोंके सखि ! रजनि आधी चलि गई ।
यहींमें लीलासे कलह करि ज्यों रूसत भई,
दिसा प्राची त्योंही सवति सम लाली धर लई ॥८॥

॥ मूल श्लोक ॥

श्लाघ्यं नीरसकाष्ठताडनशतं श्लाघ्यः प्रचण्डातपः,
क्लेशः श्लाघ्यतरः सुपङ्कनिचयैः श्लाघ्योऽतिदाहानलः।
यत्कान्ताकुच पार्श्व बाहु लतिका हिल्लोल लीला सुखं
लब्धं कुम्भुवर ! त्वया नहि सुखं दुःखै र्विना लभ्यते॥

॥ तिलक-सवैया ॥

डंडन चोट भले सहिबो, बरु आतपमें तपिके मरिजैबो,
नीक है कींचडमें सडिबो, धन है वही दाहकमें जरिजैबो ।
कामिनिके कुचको धाकि आवत, दै गल बाँह सटे जुरिजैबो,
हे घटराज ! न बोल अहै, बिनु दुःख सहे सुखमें रहिजैबो ॥९॥

॥ मूल श्लोक ॥

किं किं वक्त्र मुपेत्य चुम्बसि बला न्निर्लज्ज! लज्जा क्व ते?
वस्त्रान्तं शठ! मुञ्च मुञ्च शपथैः किं धूर्त! वाग्बन्धनैः।
खिन्ना हं तव रात्रिजागरवशा त्ता मेव याहि प्रियां,
निर्माल्यो ज्झित पुष्प दाम निकरे का षट्पदानां रतिः॥

॥ तिलक-सवैया ॥

क्यों मुख चूमत मोर निलज्ज! नहीं रचिकौ तोंहि लाज लखाती?
छाड़िदै आंचर मोर अरे सठ! धूर्त! हमै किरिया न सुहाती।
हौं अति खिन्न भई लखि तो चख, जागतही सब रात सिराती,
जाहु चले वहिके ढिग वासिय-फूल कली न अली मन भाती॥१०॥

॥ मूल श्लोक ॥

वाणिज्येन गतस्स मे गृहपति र्वार्ता पि न श्रूयते
प्रात स्तज्जननी प्रसूततनया जामातृगेहं गता।
बाला ह न्नवयौवना निशि कथं स्थातव्य मस्मद्गृहे?
सायं सम्प्रति वर्तते पथिक हे स्थानान्तरे गम्यताम्॥

॥ तिलक सवैया ॥

बानिज हेत गये गृहके पति, बातहु नांहि सुनाति निगोरी
प्रातहिं सास गई ननदोय,घरे सुनि सौरि सुता सुखवोरी।
हौं जुवती नव जोवन है, नहि चाहिए मो घरमें वसिबोरी
पांथ! कहूं अनतै रहुजाय, भई अब सांझ है देरिहु थोरी॥११॥

॥ मूल श्लोक ॥

यामिन्येषा बहल जलदै र्बद्धभीमान्धकारा
निद्रां यातो गृहपति रसौ क्लेशितः कर्मदुःखी।
बाला चाहं मनसिजभया त्प्राप्तगाढ प्रकम्पा
ग्राम श्चौरै रय मुपहतःपान्थ! निद्रां जहीहि॥१२॥

॥ तिलक सवैया ॥

घनघोर घटा उमडीं चहुंओरसो, रातमें गात सुझात है नांही,
गृहके पति सोय रहे निज कर्म के, दुःख में क्लेसित है मनमांही।
बयकी अति थोरी किसोरी अहौं, मन जांत की भीति कँपावत जांही
जुरि आय हैं ग्रामपै चोर सबैं,अब जागु बटोहि ! कहौं तुव पांही॥१२॥

॥ मूल-श्लोक ॥

इयं व्याधायते बाला, भ्रू रस्याः कार्मुकायते।
कटाक्षाश्च शरायन्ते, मनो मे हरिणायते ॥१३॥

॥ तिलक दोहा ॥

यह बाला व्याधा भई, याके भौंह कमान।
तिरछी चितवन बान है, मो मन हरिन समान ॥१३॥

॥ मूल श्लोक ॥

क्वभ्रातश्!चलितोऽसि वैद्यकगृहं किन्तत्र शान्ती रुजां
किन्ते नास्ति गृहे सखे!प्रियतमा सर्वाङ्गदान्हन्तिया।
वातश्चे त्कुचकुम्भमर्दनवशा त्पित्तश्च वक्त्रामृतात्
श्लेष्माणं विनिहन्ति हन्त!सुरत व्यापार केलिश्रमात्

॥ तिलक कुंडलिया ॥

भाय ! कहो कहँ जात हौ ? वैदराज के गेहु।
काहे को ? ओषध करन, तो नुस्खा सुनि लेहु ॥
तो नुस्खा सुनि लेहु, कहा प्यारी घर नांही।
सब रोगन को दूरि, करै एकै छन मांही ॥
कुच मर्दन हर बात, बदन चूमन पित घायक।
हरत सुरत स्रम कफाहिं, रसिक रोगी मन भायक ॥१४॥

॥ मूल श्लोक ॥

दृष्टिं देहि पुन र्बाले ! कमलायतलोचने।
श्रूयते हि पुरालोके, विषस्य विषमौषधम् ॥१५॥

॥ तिलक दोहा ॥

फिरिके वस मोंहि ताकि दे, पंकज लोचनि दोय !
अस सुनियत सब लोक में, विष ओषधाविष होय ॥१५॥

॥ मूल श्लोक ॥

अन्तर्गतामदनवह्निशिखावली या
सा बाधते किमिह चन्दनचर्चितेन ।
यःकुम्भकारपवनोपरि पङ्क लेप
स्तापाय केवल मसौ नच तापशान्त्यै ॥१६॥

॥ तिलक-सवैया ॥

मो उर अंतर जाय धंसी, मदनागिनि केरि सिखावलिया
सो धधकाय रही सगरो तन, नाहक चन्दन लाव हिया ।
जो घटकार सुधारि करै निज आँवनि पंकन लेपनिया
सो नहिं ताप हरै सजनी ! वरु और बढावत देखलिया ॥१६॥

॥ मूल श्लोक ॥

दृष्ट्वा यासां नयन सुखमा बङ्गवाराङ्गनानां
देशत्यागः परमकृतिभिः कृष्णसारै रकारि ।
तासा मेव स्तनयुगजिता दन्तिन स्सान्ति मत्ताः
प्रायो मूर्खः परिभवविधौ नाभिमानं तनोति ॥१७॥

॥ तिलक-सवैया ॥

जिन बंगके वारवधूटिनके, लखिकै चखकी सुखमा समुदाई,
सुकृती मृग लोग तजे निज देसहिं, जाइवसे कहुँ भागि पराई ।
उनके कुच कुम्भ से जीते गये, गज जूथन को कछु लाज न आई
उनमत्त भये विहरैं नहिं मूरख, हारतहू अभिमान दुराई ॥१७॥

॥ मूल श्लोक ॥

अपूर्वो दृश्यते वह्निः, कामिन्या स्तनमण्डले ।
दूरतो दहते गात्रं, हृदि लग्नस्तु शीतलः ॥१८॥

॥ तिलक दोहा ॥

अद्भुत अगिनि लखात है, कामिनि कुचतट मीत !
दहैं दूरते देहको, उर लागत अति सीत ॥१८॥

॥ मूल श्लोक

कथ मेत त्कुचद्वन्द्वं, पतितं तव सुन्दरि !
पश्याध स्खनना न्मूढ़ ! पतन्ति गिरयोऽपिच ॥१९॥

॥ तिलक दोहा ॥

किहि कारन यह कुच युगल, सुन्दरि लटक्यो तोर ?
देखु मूढ ! नीचे खने, गिरिहु गिरत करि जोर ॥१९॥

॥ मूल श्लोक ॥

कुसुमे कुसुमोत्पत्तिः, श्रूयते नच दृश्यत ।
बाले ! तव मुखाम्भोजे, कथ मिन्दीवर द्वयम् ॥२०॥

॥ तिलक दोहा ॥

होत फूल में कुसुम अस, सुनियत लखियत नांहि ।
किहि विधि इन्दीवर जुगल, तुव मुख अबुंज मांहि ॥२०॥

॥ मूल श्लोक ॥

अयि मन्मथचूतमञ्जरि ! श्रवणायतचारुलोचने
अपहृत्य मनःक्व यासि तत्, कि मराजक मत्र राजते२१

॥ तिलक दोहा ॥

काम आमकी मंजरी, कान तने जुग नैन ।
कहां जाति चित चोरिकै; का इहँ नरपति भैन ॥२१॥

॥ मूल श्लोक ॥

कोप स्त्वया हृदि कृतो यदि पङ्कजाक्षि !
सोऽस्तु प्रिय स्तव किमत्र विधेय मन्यत् ।
आश्लेष मर्पय मदर्पितपूर्बमुच्चै
र्दन्त-क्षतं मम समर्पय चुम्बनञ्च ॥२२॥

॥ तिलक दोहा ॥

कमल नैनि ! जु कोपही, तुव हिय पिय बस कौन ?
मो आलिमन, दन्तछत, चुम्बन, फेरहु तौन ॥२२॥

इति श्री "कविराज" कालिदास कृतं शृङ्गार
तिलकं (खण्डकाव्यं) समाप्तम्।

संवत रस सर अंक ससि (१९५६)
फागुन सप्तमि कारि।
दिन बुध, नारायन पती,
भाषाकिय निरधारि॥ १॥

इति श्री त्रिपाठि नारायण पति शर्म विनिर्मितं शृङ्गार
तिलक तिलकं समाप्तम्।

शुभम्॥